International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 04-01-2026, Accepted: 04-02-2026, Published: 19-02-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 135-137

संजीव के उपन्यास : आदिवासी जीवन, शोषण और प्रतिरोध

एम. शाबान खान
पीजीटी हिंदी हार्वेस्ट, इंटरनेशनल स्कूल बंगलुरु, कर्णाटक, भारत

सारांश
हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन पर लेखन प्रेमचंद–पूर्व युग से ही प्रारंभ हो गया था। इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए संजीव ने अपने उपन्यासों 'धार', 'पांव तले की दूब' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में आदिवासी जीवन, उनके शोषण, संघर्ष और सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण किया है। 'धार' उपन्यास संथाल आदिवासियों के पर्यावरणीय और सामाजिक शोषण को उजागर करता है, जहाँ मैंना अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक बनती है। 'पांव तले की दूब' भूमि अधिग्रहण, विस्थापन और आदिवासियों के दमन की कथा है, जिसमें सुदीप्त जैसे पात्र आदिवासियों के पक्ष में संघर्ष करते हुए व्यवस्था से हताश हो जाते हैं। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' था: जनजाति के शोषण, राजनीति के अपराधीकरण और स्त्री उत्पीड़न को प्रस्तुत करता है। इन उपन्यासों में पूँजीपति, धर्म और प्रशासन द्वारा आदिवासियों के दमन के साथ–साथ उनके प्रतिरोध और चेतना के उदय को भी दर्शाया गया है। संजीव के ये उपन्यास केवल आदिवासी जीवन की पीड़ा नहीं बल्कि उनके संघर्ष और अस्तित्व की गाथाएँ हैं, जो यथार्थ और संवेदना से ओत–प्रोत होकर सामूहिक चेतना के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

मूल शब्दः संजीव, उपन्यास, धार, पांव, तले दूब, जंगल, जहाँ, शुरू, होता, आदिवासी, जीवन, संघर्ष, शोषण, चेतना, दस्तावेज, लेखक, पूँजीवाद, प्रशासन, धर्म, अन्याय, यथार्थ, अस्मिता, पर्यावरणीय, विस्थापन, विडंबना, संवेदनशीलता, पात्र, प्रतीक, प्रतिरोध, आकांक्षा।

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन पर लेखन एक महत्वपूर्ण सामाजिक और साहित्यिक धारा के रूप में विकसित हुआ है। आदिवासी समाज भारतीय जनजीवन का अभिन्न अंग होते हुए भी लंबे समय तक उपेक्षित रहा। साहित्यकारों ने जब समाज के हाशिये पर खड़े इन समुदायों की ओर दृष्टि डाली, तब उनकी पीड़ा, शोषण, संघर्ष और अस्मिता की चेतना साहित्य का महत्त्वपूर्ण विषय बन गई। यद्यपि यह कहना कठिन है कि हिंदी में आदिवासी जीवन पर लेखन कब प्रारंभ हुआ, परंतु इतना निश्चित है कि प्रेमचंद–पूर्व युग में ही इस विषय पर रचनात्मक प्रयास आरंभ हो चुके थे। प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण ने इस परंपरा को और बल प्रदान किया, जिसके पश्चात अनेक रचनाकारों–देवेन्द्र सत्यार्थी, रांगेय राघव, नागार्जुन, शानी, शैलेश मटियानी आदि ने आदिवासी जीवन की विडंबनाओं को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया।

इसी क्रम में हिंदी कथा–साहित्य में संजीव एक सशक्त और संवेदनशील उपन्यासकार के रूप में उभरते हैं। उन्होंने आदिवासी जीवन, उनके संघर्ष, पर्यावरणीय संकट, पूँजीवादी शोषण और राजनीतिक अपराधीकरण को अपने उपन्यासों में अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास 'धार', 'पांव तले की दूब' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदिवासी जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करते हैं। इन रचनाओं में लेखक ने न केवल आदिवासी जीवन की त्रासदी का चित्रण किया है, बल्कि उनके भीतर उठते प्रतिरोध, आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना के स्वर को भी स्वर प्रदान किया है। इस प्रकार, संजीव का लेखन आदिवासी यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज बनकर उभरता है।

आदिवासी जन–जीवन को लेकर हिंदी में लेखन कब से आंरभ हुआ, यह कहना ज़रा मुश्किल है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पूर्व प्रेमचंद युग में ही आदिवासी जीवन पर लेखन आरंभ हो चुका था। उपन्यास के विषय में यदि हम बात करें तो प्रेमचंद पूर्व जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'बसंती मालती' (1899) में प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही रामचीज सिंह का 'बन विंहगिनी', ब्रजनंदन सहाय का 'अरण्यबाला' (1904) तथा मन्नन द्विवेदी गजपुरी का 'रामलाल' (1904) विशेष उल्लेखनीय है। प्रेमचंद युग और उसके बाद अनेक ऐसे उपन्यासकार सामने आए, जिन्होंने आदिवासी जीवन और उनके संघर्ष को अपने उपन्यास का विषय बनाया। इनमें देवेन्द्र सत्यार्थी, रांगेय राघव, नागार्जुन, गुलशेर खाँ 'शानी', शैलेष मटियानी, राकेश वत्स, मणिमधुकर, सुरेशचंद्र श्रीवास्तव इत्यादि का नाम आता है। इसी क्रम में हिंदी के प्रतिभावान और आदिवासी समाज के कुशल चितेरे संजीव का नाम आता है। संजीव के उपन्यासों में 'किसनगढ़ का अहेरी', (1981) 'सर्कस', (1984) 'सावधान नीचे आग है' (1986) 'धार' (1990) 'पांव तले की दूब' (1995) 'जंगल जहाँ शुरू होता है', (2000) 'सूत्रधार' (2003) तथा 'आकाश चंपा' (2008) का नाम आता है। लेकिन आदिवासी उपन्यासों के सन्दर्भ में हम 'धार', 'पांव तले की दूब' तथा 'जंगल जहाँ शुरू होता है' का ही विश्लेषण करेंगें।

आदिवासी जीवन पर आधारित संजीव का उपन्यास 'धार' संथाल आदिवासियों पर आधारित है। इस उपन्यास में संथालों का जितना यथार्थ चित्रण किया गया है, वह देखते ही बनता है। ''संजीव ने जो 'धार' संथाल आदिवासियों पर चलाई है, वह पूरी तरह 'यथार्थ' के पक्ष में चलती दिखाई पड़ती है।''[1] इस उपन्यास में मैंना केन्द्रीय भूमिका में है। कोयालांचल में महेन्दर बाबू ने एक तेजाब का कारखाना खोला है, जो बस्ती के लिए मुसीबत बन गया। कारखाने से निकलने वाले धुएँ ने समस्त वातावरण को विषैला बना दिया। आए दिन उस कारखाने से बहने वाले दूषित पानी से जानवरों की मौत होती रहती है। लोग खाँस–खाँस कर तरह–तरह की बीमारियों की चपेट में आ रहे हैं। कारखाने में लोग आए दिन तेजाब से झुलसते रहते हैं। उससे भी ज्यादा महेन्दर बाबू के अत्याचार और शोषण से संथाल झुलस रहे है। इस तेजाब के कारखाने का विरोध मैंना करती है, लेकिन महेन्दर बाबू की कूटनीति से उसका पिता टेंगर और पति फोकल ही झूठी गवाही देकर उसे जेल भेज देते हैं, जहाँ जेलर उसका शारीरिक शोषण करता है और वह माँ बन जाती है। इसका दोष भी जेलर मंगर कबड़ी पर लगाकर उसे मैंना का दूसरा और नया पति बना देता है। कथा में प्रौढ़ता तभी आती है, जब मैंना जेल से छूट कर महेन्दर बाबू के खिलाफ मोर्चा खोल देती है।

कथाकार संजीव ने उपन्यास में घटनाओं को बड़े ही सजीव और यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। बस्ती में घटती दिनचर्या से लेकर, वामपंथी अविनाश शर्मा का विरोध और मैंना का सहयोग बड़ा ही रोचकता उत्पन्न करता है। महेन्दर ने मैंना की माँ को डायन घोषित करवाकर उसे गायब करवा दिया, वैसे ही वह मैंना को भी अपने रास्ते से हटाना चाहता है, लेकिन वह बड़ी ही जीवट और संघर्षशील महिला है। किसी भी तरह से हार न मानकर महेन्दर बाबू के विरूद्ध संघर्षरत ही रहती है। अविनाश के सहयोग से वह कारखाने के मुद्दे को और उछालती है। लेकिन महेन्दर पुलिस के सहयोग से लोगों को बाँटकर कारखाना चालू रखता है और दमन तथा उत्पीड़न का सहारा लेता है। ''यह सारा कुछ प्रेमचंद्र के रंगभूमि जैसा संघर्ष है। लेकिन इस संघर्ष की प्रकृति अपने हिसाब से न गाँधीवादी है और न ही सूरदास जैसी किसी व्यक्ति की इसमें केन्द्रीय भूमिका है।''[2]

यह उपन्यास केवल आदिवासियों के संघर्ष को ही नहीं दर्शाता वरन् उनके हालात और बदहाल जिंदगी की झाँकी भी प्रस्तुत करता है। संपूर्ण बस्ती की भयावह स्थिति, कुपोषण, प्रदूषण, बेरोज़गारी, लोगों के रहन–सहन और उनके जीवन की दरिंद्रता को भी स्पष्ट रूप से चित्रित करता है– ''न दिन है न रात, दोनों की दहलीज पर संथाल परगना का पूरा नंगा इलाका, घायल गुर्राते सुअर की तरह पड़ा है। नंगी अध–नंगी पहाड़ियों में जहाँ–तहाँ खड़े साल, मुहऐं, खजूर और ताड़ के पेड़, खेढ़े की झाड़ियाँ, बलुई बंजर धरती, सूखती नदियाँ, सूखते तालाब, भयंकर पोखरियाँ खायें, जहाँ–तहाँ सोये मुर्दे से लगता है।''[3]

इस उपन्यास में लेखक ने संथालों को शोषित करने वाली शक्तियों–पूँजीपति, प्रशासन और धर्म आदि की नीतियों का भी बड़ा ही स्वभाविक और यर्थाथ वर्णन किया है। महेन्दर बाबू अपनी पूँजी के दम पर शोषण कर रहा है, प्रशासन और धर्म उसके सहयोगी की तरह हैं। अपने विरूद्ध उठने वाली मैंना की आवाज़ को दबाने के लिए उसे जेल भेज दिया, लेकिन फिर भी उसने विरोध करना नहीं छोड़ा तो उसे ओझा द्वारा डायन घोषित करके मार डालने का कुचक्र रचा। ''प्रेमचंद्र की तरह यहाँ भी धर्म और शास्त्रों की भूमिका सब कहीं जन विरोधी और ऋणात्मक है। जनता के विरूद्ध सक्रिय एवं संगठित होकर वे शोषक और दमनकर्ता के साथ खड़े है।''[4] अशिक्षा और अज्ञानतावश संथाल बीमारी का इलाज भी ओझा से ही करवाते हैं, जो उनका शोषण करता है और समय आने पर महेन्दर बाबू के इशारे पर उन्हें ही डसता है। महेन्दर प्रतिरोधी शक्ति को कुचलने के लिए भूमाफियों, गुंडो और प्रशासन के लोगों के सहयोग से ही वह सफल होता है। मैंना को कमज़ोर करने के लिए उसके शक्ति–स्रोत शर्मा को पुलिस द्वारा पकड़वा देता है।

इस उपन्यास के कथानक को देखकर लगता है कि यह उपन्यास केवल आदिवासियों की दुर्दशा, समस्याओं या उनके समाज का चित्रण न करके उनके संघर्षों की ही गाथा है–''धार अत्याधिक रूप से आदिवासी समाज का चित्र न होकर कोयलारी क्षेत्र में गंधक के तेजाब कारखाने के विरूद्ध संघर्ष पर केंद्रित उपन्यास है।''5 यह संघर्ष ही उपन्यास को विशेष बनाता है। आदिवासियों के जीवनयापन करने से लेकर तेजाब फैक्ट्री के विरूद्ध संघर्ष की गाथा इस उपन्यास में मिलती है। कारखाने ने संथाली बस्ती के लोगों का जीना मुश्किल कर रखा है। इस भयानक वातावरण का पता उस बात से भी चलता है, जब बस्ती में एक आगंतुक खाँसता हुआ आता है और हैदर मामा से पूँछता है कि यह कारखाना काहे का है। हैदर मामा का जवाब था–ज़हर का है। इस ज़हरीले वातावरण से बस्ती के लोग रोज संघर्ष करते हैं और इससे परेशान होकर ही मैंना को कारखाने के विरूद्ध मोर्चा खोलना पड़ता है। मैंना के इस संघर्ष को प्रभावी और सार्थक बनाने के लिए लेखक ने वामपंथी विचारधारा का मानने वाले अविनाश शर्मा नाम के पात्र का निर्माण किया, जिससे संघर्ष स्वभाविक लगे।

आदिवासी जीवन और संघर्षो पर आधारित संजीव का उपन्यास 'पांव तले की दूब' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास 1995 में पहली बार प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में झारखण्ड के उन आदिवासियों की कथा है, जो नीच, हेय और तुच्छ समझे जाते हैं। जिनका सही मायनों में अपना कोई वजूद ही नहीं है– ''उपन्यास का नाम ही आदिवासियों की स्थिति को स्पष्ट कर देता है। पांव तले की दूब जिसे हम बिलकुल सहजता और बिना किसी संकोच के कुचलते हुए चले जाते हैं। और इस कुचलने का अपराध बोध भी नहीं होता।''[6]

'पांव तले की दूब' उपन्यास में आदिवासियों को खदेड़ने, उन्हें उजाड़नें और उनकी ज़मीनों को छीनने की समसामयिक कथा है। ज़मीनों के बदले में मिलने वाला मुआवजा अफसरों के ही पेट में जाता है, जिससे उन आदिवासियों का दोहरा शोषण होता है। यह आदिवासी पहले अपनी ज़मीन को बचाने के लिए मौन संघर्ष करते हैं, उसके बाद अपने रहने और जीविका के लिए संघर्ष करते हैं। यही आत्मा संघर्ष इस उपन्यास का केन्द्रीय बोध है। कथा में लेखक ने भूमाफियों और पूँजीपतियों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए ऐसे पात्र का गठन किया, जो स्वयं आदिवासी नहीं है, लेकिन उनका शोषण होता देख वह उनके लिए संघर्षरत है। यह पात्र सुदीप्त जितना संघर्ष करता है, हालात उतने ही ज्यादा खराब होते जाते हैं, अंत में हताश होकर ही वह आत्म हत्या कर लेता है। जब सुदीप्त इस इलाके में आता है तो चारों ओर आदिवासी गाँव बसे थे, लेकिन आज मैदान साफ है। ''वर्षों पहले यहाँ नौकरी और मकरा नाम के दो गाँव हुआ करते थे। किसी ने फूंक मारकर उड़ा दिया उन्हें। कहाँ गया वे विस्थापित लोग? उड़ी हुई गर्द की तरह जहाँ–तहाँ थिरा रहे होंगे लोग।''[7]

इस उपन्यास में लेखक ने सत्य कल्पना को महत्त्व दिया, दूसरे पुराने शब्दों में कहें तो यर्थाथवाद को महत्व दिया। आज के समय में और उससे पहले भी आदिवासियों की ज़मीनों को भू–माफियों और पूँजीपतियों ने जबरन छीन लिया और फिर उन पर अत्याचार भी किये, जिसकी प्रतिक्रिया में ही नक्सलवाद पनपा। संजीव भी इसी ओर संकेत करते हुए कथानक का ताना–बाना बुनते हैं और आदिवासियों को विस्थापित होता हुआ दिखाते हैं पर इतना है कि वह भूमि अधिग्रहण के प्रति संघर्ष करने पर बल देते हैं।

संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है'। नेपाल की सीमा से सटे बिहार के चंपारन इलाके के आदिवासी था: जनजाति की समस्याओं, संघर्षों तथा उनके जीवन का एक दस्तावेज है। इस उपन्यास में राजनेता, पुलिस–प्रशासन तथा गुण्डों द्वारा आदिवासियों पर होने वाले अत्याचारों और उनकी प्रतिक्रिया का चित्रण है। था: जनजाति का शोषित और प्रताड़ित 'काली' शोषकों से संघर्ष करने के लिए डकैत बन जाता है। काली स्वयं ही अपनी मर्ज़ी अथवा धन के लालच में डाकू नहीं बनता, बल्कि स्वयं शासन और प्रशासन के लोग इसके जिम्मेदर है। स्वयं काली कहता है– '' हमने नहीं चुनी थी यह ज़िंदगी। नहीं बने थे हम इन राहों के लिए। फिर भी देखों.....फिर भी देखो कैसे धकेल दिए गए..... ।''[8]

भारतीय राजनीति का अपराधीकरण के दृश्य भी इस उपन्यास में दिखाई पड़ते हैं। इलाके के सांसद और केन्द्र के मंत्री जी का परसा (परशुराम) डाकू पर विशेष प्रेम है, क्योंकि चुनाव में फण्ड आदि की व्यवस्था वही करता है, साथ ही चुनाव में जीत दिलाने में भी उसकी अहम भूमिका रहती है। इस तरह राजनीति और अपराध के चोली दामन के साथ को संजीव ने अपने इस उपन्यास में चित्रित किया है। ''राजनीति का अपराधीकरण और उसमें पुलिस की भूमिका एक तरह से उपन्यास का केन्द्रीय मुद्दा है।''[9]

था: जनजति के लोग दो तरह से शोषण के शिकार होते हैं, एक तरफ उनकी संपत्ति पर मालिकों की नज़र रहती है, दूसरी तरफ पुलिस वाले उनके घरों की महिलाओं को आए दिन उठा ले जाते हैं। शोषण की चक्की में पिसते हुए लोग या तो डाकुओं के पैरोकार बन जायें या फिर हिम्मत करके खुद काली की तरह डाकू बन जायें। क्योंकि शोषकों ने और कोई रास्ता छोड़ा ही नहीं। इन था: लोगों के लिए दो सरकारें थीं–पहली भारत सरकार, जिसके कारिन्दें दिन दहाड़े उनकी औरतों को लूट रहे थे, दूसरी डाकू जिनसे इन्हें कुछ नरमी की उम्मीद रहती थी।

इस उपन्यास में नारी के प्रश्न और उनके जीवन संघर्ष को बार–बार उठाया गया है। पुरूषों द्वारा नारी का शारीरिक और मानसिक शोषण से लेकर सर्वण स्त्रियों द्वारा था: स्त्रियों की प्रताड़ना और अत्याचार पर भी संजीव ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है। स्त्री का शोषण करने के तरीकों में तो अंतर है, लेकिन शोषण में कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता है। सुंदर पाण्डेय की पत्नी अपने भाई से फेंकन की पत्नी का शारीरिक शोषण करवाती है, लेकिन जब पंच बैठते हैं तो उसमें कहा जाता है– ''पांडे या उनके साले ऊँची जाति के आदमी फेंकन बहू जैसी नीच जाति के साथ यह कर्म कर ही नहीं सकते।''[10]

इस उपन्यास में कुछ अन्य समस्याओं का भी चित्रण किया गया है जैसे–अंधविश्वास, जाति प्रथा, छुआ–छूत इत्यादि। साँप के काटने पर लड़की को अस्पताल न ले जाकर ओझा के पास ले जाया जाता है और ये विश्वास किया जाता है कि साँप के डसने से कोई मरता नहीं है, ओझा मंत्र पढ़कर जगा देगा। इसके साथ ही था: ओं का विश्वास है कि साँप काटने वाले को न तो दफनाया जा सकता है और न ही जलाया जा सकता है बल्कि उसे नदी में बहा देना चाहिये। जाति व्यवस्था और छुआ–छूत जैसी बीमारी का इस उपन्यास में कई जगह चित्रण किया गया है– ''हुआ यह कि आँगन बहुार हुए फेकन बहू ने आंगन के बरतनों को उठाकर माँजने वाली जगह पर रखा दिया था। इस बात पर पहाड़न एकदम आपे से बाहर हो गई, जैसे अनर्थ हो गया हो।''[11]

इस उपन्यास में काली और पुलिस अफसर कुमार दो प्रमुख पात्र हैं, जिन की कथा एक दूसरे के समानातंर ही चलती रहती है। कुमार था: आदिवासी के डाकू बनने पर विचार करता है और उनके कारणों का पता निकालता है। लेकिन फिर भी वह कुछ कर नहीं सकता। क्योंकि डाकू बनने का कारण शोषण और अत्याचार है, जिसे वह चाहकर भी रोक नहीं सकता, क्योंकि शासन–प्रशासन के लोग ही इसके जिम्मेदार है। ''कुमार एक संवेदनशील और कर्तव्यनिष्ठ अधिकारी है जो अपने घर परिवार को पटना में छोड़कर डाकू उन्मूलन के इस अभियान में बीहड़ों में भटकते हुए ईमानदारी से अपना काम करना चाहता है और भर सक करता भी है।''[12]

इस उपन्यास में संजीव आदिवासी जीवन और उनके संघर्षो को चित्रित करते हुए चलते है। उपन्यास के आरंभ से यह संघर्ष विविध रूपों में चलता है और उपन्यास के अंत में भी यह खत्म नहीं होता। यह संघर्ष चाहें पुलिस द्वारा चलने वाला उन्मूलन का हो या फिर काली जैसे अनेक डाकुओं का अपने जीवन से हो। कुमार चला जायेगा, तब कोई दूसरा अफसर आ जायेगा, काली मर भी गया तो कोई दूसरा डाकू आ जाएगा। यह संघर्ष कभी खत्म नहीं होगा बल्कि लगातार चलता ही जायेगा, बस अपना रूप बदल लेगा। अंतिम अध्याय में लेखक यही दर्शाता है– ''गाँव उजार देहलीं। सर्च के नाम पे गाँव–गाँव औरतन के मजा लुटलीं, जंगल में मंगल कइलीं। अऊर चाहीं का? एनकाउंटर के नाम पर मरडर कइलीं, आइल रहलीं फिरौती खत्म करे, खुद–ए–वसूले लगलीं फिरौती। ठीक–ह–अ ! जा तानी त–अ जाई। अब दोसर जन्म ले के आयब।''[13]

संजीव के आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यासों की विशेषता है कि उनमें केवल आदिवासी जीवन का चित्रण अथवा समस्याओं को ही उजागर नहीं किया गया, बल्कि आदिवासियों द्वारा परिस्थितयों, शोषण, अत्याचार और भ्रष्टाचार से संघर्ष करते हुए भी दिखाया जाता है। यह संघर्ष चलता रहता है। शोषक वर्ग अपनी दमनकारी नीतियों से बाज़ नहीं आता तो शोषित आदिवासी भी अपने विरोधी स्वर को थमने नहीं देते हैं। यह विरोध सामूहिक विरोध नहीं होता है, बल्कि कोई एक या दो पात्र ही संघर्ष करते दिखाई पड़ते है। उदाहरण स्वरूप 'धार' उपन्यास में मैंना और अविनाश शर्मा ही महेन्दर बाबू और उनके सहयोगियों के विरूद्ध संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं। वहीं 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में काली अपनी विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए डाकू बन जाता है। यदि लेखक चाहता तो समस्त आदिवासियों को विरूद्धों के प्रति संघर्ष करते हुए दिखा सकता था, लेकिन संजीव ने ऐसा इसलिए नहीं किया क्योंकि फिर उपन्यास वास्तविकता से दूर हो जाता। आज सामूहिक विरोध की ही आवश्यकता है, जिससे आदिवासी अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि आदिवासियों में शोषण के प्रति चेतना का विकास आंरभ दिखाया है। संजीव के तीनों उपन्यास 'धार', 'पांव तले की दूब' तथा 'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदिवासी जीवन की त्रासदी और जीवन संघर्ष के उपन्यास हैं।

सन्दर्भ

1. हिंदी उपन्यास और आदिवासी चिंतन–सं० डॉ. विनोद विश्वकर्मा प्रथम संस्करण, अनंग प्रकाशन दिल्ली, पृ०–163
2. आदिवासी साहित्यः दशा एवं दिशा–सं० डॉ. एम० फ़ीरोज़ खान, प्रथम संस्करण, वाङ्मय
3. बुक्स अलीगढ़–पृ०–62
4. धार–संजीव, प्रथम संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ०–39
5. आदिवासी साहित्यः दशा एवं दिशा –पृ०–62
6. वही, पृ०–62
7. आदिवासी जीवन संघर्ष और परिवर्तन की चुनौतियाँ–अभिषेक कुमार यादव पृ०–2
8. पांव तले की दूब, संजीव, संस्करण–2005 वाग्देव पॉकेट बुक्स पृ०–148
9. जंगल जहाँ शुरू होता है–संजीव, 2015 संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन पेपर बैक्स पृ०–
10. 96–97
11. आदिवासी साहित्यः दशा एवं दिशा, पृ०–58
12. जंगल जहाँ शुरू होता है–संजीव, 2015 संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन पेपर बैक्स पृ०–92
13. वही, पृ०–90
14. आदिवासी साहित्यः दशा एवं दिशा, पृ०–65
15. जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ०285